विकारों पर विजय कैसे हो?

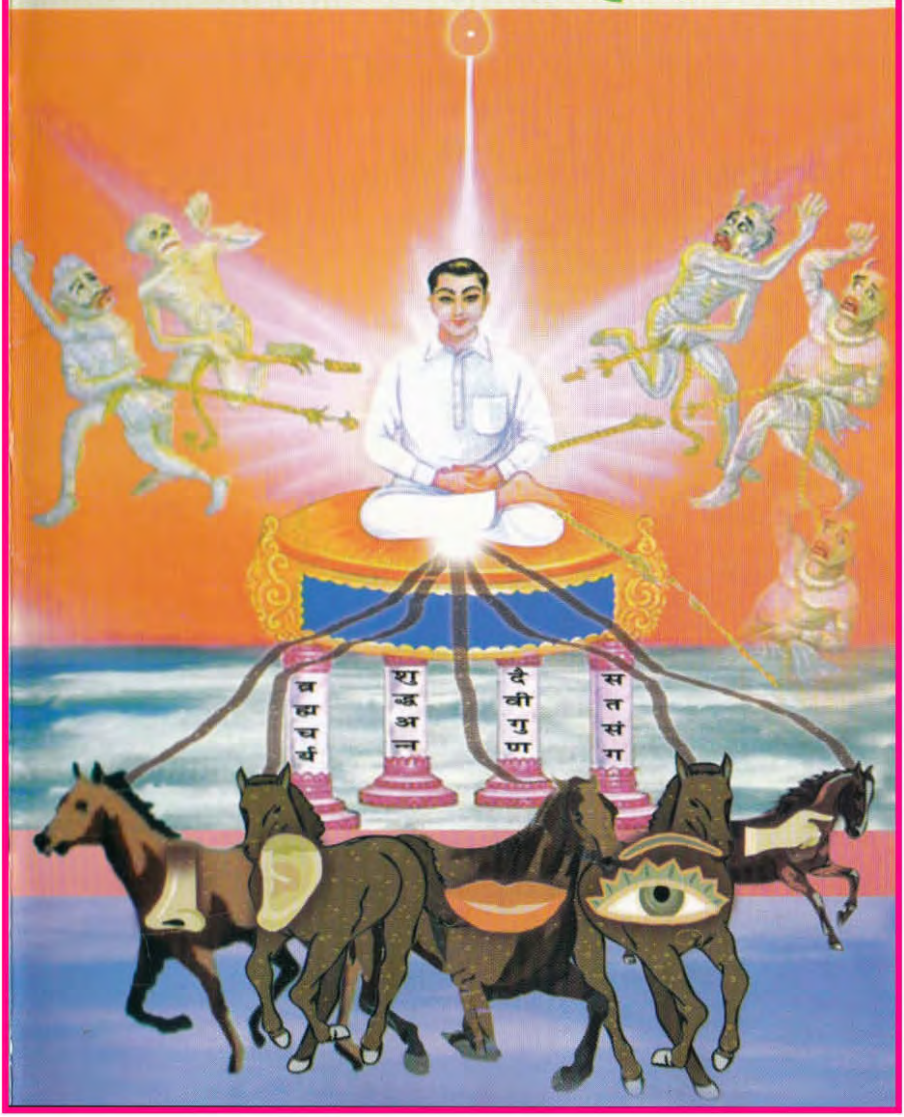

विकारों पर विजय कैसे हो?

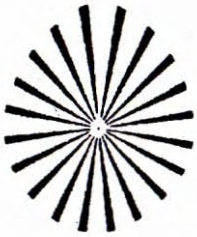

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय
पाण्डव भवन, माऊण्ट आबू (राज.)

विषय-सूची

क्रम संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
1.	सभी विकारों का मूल	3
2.	काम विकार को जीतने वाली युक्तियाँ	4
3.	क्रोध को मिटाने की युक्तियाँ	9
4.	लोभ का संस्कार कैसे मिटे?	14
5.	मोह-ममता	19
6.	अहंकार कैसे छूटे?	23
7.	अन्न-शुद्धि द्वारा मन की शुद्धि	27
8.	दैनिक चार्ट	32

लेखक :
ब्रह्माकुमार जगदीश चन्द्र

मुद्रक :
ज्ञानामृत भवन,
शान्तिवन, आबू रोड (राज.)

© **Copyright :** Brahma Kumaris Ishwariya Vishwa Vidyalaya, Mount Abu (Raj.)
No part of this book may be printed without the permission of the publisher.

सभी विकारों का मूल

आज हरेक मनुष्य में काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार और सुस्ती में से एक-न-एक विकार थोड़ा बहुत अवश्य है। यदि आप ग़हराई में जायेंगे तो मालूम पड़ेगा कि **देह-अभिमान** (Body-Consciousness) ही इन पाँच विकारों का मूल कारण है।

मनुष्य देह के आधार पर पुरुष-पन या स्त्री-पन के भान में आकर ही **'काम विकार'** के वशीभूत होता है और अपने ओज और तेज को खोकर शरीर को दुर्बल कर बैठता है, बुढ़ापे तथा मृत्यु की ओर बढ़ना शुरू करता है और अनेक प्रकार के शारीरिक रोगों का शिकार होने लगता है। फिर 'काम' विकार के परिणामस्वरूप वह जो विकारी सन्तति पैदा करता है, उसके दु:ख में दु:खी रहने लगता है और उनमें **ममत्व** करके सारा दिन उन्हीं के लिए कमाने तथा घर बनाने में लगा रहता है। काम विकार के कारण वह अपने विवेक को तथा सहनशीलता को भी खो बैठता है और क्रोधी स्वभाव का बन जाता है। देह के आधार पर जिसे वह अपनी स्त्री, पुत्र-पौत्र आदि मानता है, उनकी इच्छायें पूर्ण करने के लिए वह अधिकाधिक धन पैदा करने का यत्न करता है और थोड़ा धन पाकर अधिक का लोभ करता है और उस अभ्यास से उस लोभी नर की तृष्णा नहीं मिटती। जब वह सन्तति पैदा कर लेता है और घर तथा धन बना लेता है या कुछ प्रसिद्ध नर-नारियों से अपना सम्बन्ध जोड़ लेता है तो ''मैं एक बड़ा सेठ हूँ, चार बच्चों का बाप हूँ, एक ऊँचे खानदान का व्यक्ति हूँ'' —इस प्रकार का उसे **अभिमान** हो जाता है।

अत: देखा जाय तो देह-अभिमान ही सभी विकारों की जड़ है। अब जीवन को पवित्र बनाने के लिए मनुष्य को घर-गृहस्थ छोड़ने की आवश्यकता नहीं, बल्कि 'देह-अभिमान' छोड़ने की आवश्यकता है और उसके लिए उसे 'आत्म-निष्ठ तथा योग-युक्त' होना ज़रूरी है।

काम विकार को जीतने की युक्तियाँ

काम विकार को जीतने तथा जीवन को पवित्र बनाने के लिए मनुष्य को पहले अपनी 'असल' और 'नसल' को याद रखना चाहिए। 'असल' से अभिप्राय है—अपने वास्तविक स्वरूप को जानना। जब मनुष्य यह जान लेता है कि—"मैं तो एक ज्योति-स्वरूप बिन्दु-रूप आत्मा हूँ, यह शरीर रूप कलेवर तो मुझसे भिन्न पाँच तत्वों का बना है, मैं तो परमपवित्र परमात्मा की सन्तान हूँ और उसकी सन्तान होने के कारण आत्मिक नाते से सभी नर और नारी रूपी तन में आत्माएँ मेरे भाई ही हैं," तब उसकी दृष्टि, वृत्ति और स्थिति बदल जाती है और उसके संस्कार बदलने शुरू होते हैं। आप जानते हैं कि जब तक किसी पुरुष और स्त्री में भाई-बहन की दृष्टि रहती है तब तक उनमें काम-वासना जागृत नहीं होती। अत: जो पवित्र (ब्रह्मचर्य-युक्त) एवं योग-युक्त बनना चाहता है, उसे इस प्रकार 'असल' का ज्ञान और उसकी स्मृति होनी चाहिए क्योंकि इस आत्मिक दृष्टि और स्थिति से वृत्ति विकार-युक्त नहीं होती और इस सहज एवं यथार्थ उपाय से वह इस महान् पुरुषार्थ को बिना हठ-क्रिया के करने में सफल हो जाता है।

आपने अनुभव किया होगा कि जब कोई मनुष्य अपनी धर्म-पत्नी के साथ किसी मन्दिर में जाकर अपने इष्ट की मूर्ति के सम्मुख बैठकर "त्वमेव माताश्च पिता त्वमेव...." आदि छन्द गाता है अथवा "तुम मात-पिता हम बालक तेरे" इत्यादि का पाठ करता है अथवा किसी देवी की प्रतिमा के आगे "हे अम्बे!" आदि-आदि शब्दों से उसे सम्बोधित करता है तब, उसकी दृष्टि और वृत्ति शुद्ध रहती है। वहाँ मन्दिर में वह काम-वासना से मुक्त रहता है। स्त्री और पुरुष दोनों की ओर से परमात्मा को "पिता" अथवा "दुर्गा" इत्यादि को "अम्बा" कहने का अर्थ यही तो निकलता है कि दोनों उसकी सन्तान होने से आत्मिक नाते से 'भाई-भाई' हैं। जब वे इस आत्मिक नाते को

भूल जाते हैं और परमपिता परमात्मा को भी भुला देते हैं, तब उनको 'काम' रूपी शत्रु का बाण लगता है। अत: निष्कर्ष यह हुआ कि मनुष्य को चाहिए कि पिता परमात्मा की स्मृति में रहते हुए दूसरों को आत्मिक दृष्टि से देखे और उनके साथ जो उसका आत्मिक नाता है उसे याद रखे और ईश्वरीय कुल के नाते से उन्हें भाई-भाई समझे। जब तक मनुष्य दूसरों को आत्मिक दृष्टि से नहीं देखेगा तब तक उसकी दृष्टि वासना-रहित और निर्दोष नहीं होगी।

इस 'असल' के परिचय को याद करके मनुष्य बहुत ही उच्च स्थिति में रह सकता है। 'असल' के अतिरिक्त 'नसल' (वंश) का विचार करे, तो भी मनुष्य को पवित्र (ब्रह्मचर्य व्रत में) रहने में बड़ी सहायता मिल सकती है। मनुष्य को यह सोचना चाहिए कि–"नसल के विचार से भी मैं श्रीलक्ष्मी-श्रीनारायण अथवा श्रीसीता-श्रीराम इत्यादि देवी-देवताओं का वंशज हूँ और इस कारण जैसे देवी-देवता पूर्णत: पवित्र थे वैसे ही मुझे भी पवित्र रहना चाहिए। मुझे उन देवताओं के कुल को कलंकित करने वाला नहीं बनना चाहिए।"

इस प्रकार मनुष्य को इस चिन्तन में भी रहना चाहिए कि–"मैं तो असल में शुद्ध आत्मा हूँ, परमधाम रूपी पावन धाम की अथवा वृहद मन्दिर की एक अव्यक्त और चेतन मूर्ति हूँ, पवित्रता तो मेरा स्वरूप है, मेरा धर्म है और मेरे गले का हार है। अत: मैं अपने धर्म को छोड़ कर काम रूपी अपवित्रता को अपने मन में स्थान नहीं दूँगा।"

घर में देवताओं इत्यादि के चित्र

अपने को परमात्मा का पुत्र अथवा देवताओं का वंशज मानते हुए घर में परमपिता परमात्मा शिव का चित्र तथा श्री लक्ष्मी, श्री नारायण, श्री कृष्ण, श्री सीता व श्री राम इत्यादि देवी-देवताओं के चित्र लगाने चाहिये ताकि घर में मन्दिर अथवा आश्रम की तरह वातावरण बना रहे और उनसे यह स्मृति

मिलती रहे कि 'हम देवताओं के वंशज हैं, हम तो परमात्मा की सन्तति हैं। भगवान् की सन्तान होकर हमको शैतान-कामी-नर जैसा कार्य नहीं करना चाहिए। देवताओं के वंशज होकर दानव अथवा दैत्य जैसा व्यवहार हमें नहीं करना चाहिए।' अब घर से गन्दे चित्र हटा देने चाहियें, क्योंकि ये सभी चित्र देह-अभिमानी और विकारी बनाने वाले हैं।

इस प्रकार अब घर को ही मन्दिर समझना चाहिए। जब तक घर को आश्रम (पवित्र स्थान) नहीं समझा जायेगा तब तक काम का कुठारघात (Criminal assault) तो होता ही रहेगा। देवताओं के चित्रों के अतिरिक्त अपना भी एक चित्र पवित्रता के ताज तथा सोने के ताज से युक्त बनाया और लगाया जा सकता है। वह घर में लगा हुआ रहने से इस बात की स्मृति दिलाता रहेगा कि "पवित्र बनने से स्वर्ग का दैवी राज्य-भाग्य मिलेगा और यदि मैं काम विकार द्वारा पतित बना तो राज्य-भाग्य गँवा बैठूँगा और धर्मराजपुरी में दण्ड का भी भागी बनूँगा।"

क्या गृहस्थ जीवन काम-भोग के बिना हो सकता है?

आज कई लोग कहते हैं कि यदि काम वासना को मन से निकाल दिया जाये तो भला गृहस्थ-जीवन कैसे चलेगा? अहा! आज अपने वास्तविक गृह को भूलने के कारण ही मनुष्य ऐसे प्रश्न उठाता है। मनुष्य को यह जानना चाहिए कि आत्मा का यथार्थ गृह (धाम) तो ब्रह्मलोक ही है, जहाँ से ही वह इस संसार में आई है। फिर, यह संसार भी शुरू में स्वर्ग अथवा शिवालय (पवित्र देश) ही था अर्थात् यहाँ काम विकार का नाम ही न था बल्कि योगबल द्वारा ही सन्तानोत्पत्ति होती थी। अत: हमारा घर तो है ही ब्रह्मलोक या बैकुण्ठ। वर्तमान समय का संसार तो माया की जेल है, यह घर या गृह थोड़े ही है? अत: गृहस्थ (गृह + स्थ) का वास्तविक अर्थ है—ब्रह्मलोक की स्थिति में

स्थित होना अथवा बैकुण्ठ की स्मृति में मन को स्थित करना। यदि कोई मनुष्य परम धाम और स्वर्ग ही को अपना गृह समझ कर बुद्धि को उनकी स्मृति में स्थित करे तो फिर यह प्रश्न उठ ही नहीं सकता कि 'गृहस्थ' में रहते हुए हम 'काम-भोग' के बिना कैसे रहें?

भावी विज्ञान की ओर ध्यान

ये जो ऐटम और हाइड्रोजन बम बने हैं और भारत में जो दल-बन्दी, गुटबन्दी, पारस्परिक विरोध, अन्न-संकट,धन-संकट और भ्रष्टाचार इत्यादि बढ़ते जाते हैं, ये सभी भावी विनाश के अग्रदूत ही तो हैं। परमपिता परमात्मा ने पहले से ही अनेक बार जो इसके साक्षात्कार कराये और सतयुग से लेकर कलियुग के अन्त तक का जो त्रैकालिक ज्ञान दिया है उसके आधार पर भी भावी घटना की गतिविधियों को स्पष्ट किया है। ईश्वरीय ज्ञान द्वारा तो क्या, अब तो वैसे भी विनाश के चिह्न स्पष्ट दीख ही रहे हैं।

अत: अब परमपिता परमात्मा शिव कहते हैं कि-वर्तमान समय घोर संकट (Emergency) का समय है। मौत सिर पर खड़ी है। जब संकट या मौत सामने हो अथवा मनुष्य अत्यन्त बीमार हो तो मनुष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह परमात्मा की ही याद में रहे, गीता-ज्ञान सुने और ज्ञानामृत का पान करे। यह 'काम' तो बड़ी कड़ी बीमारी है और विनाश 'महामृत्यु' है। अत: अब तो ब्रह्मचर्य के व्रत का पालन अवश्य करना चाहिए। अब इस एक जन्म के रहे हुए थोड़े से समय में मायाजीत बनने से जगतजीत बनोगे। किसी को इस भावी विनाश के बारे में निश्चय न भी हो तो भी सोचना चाहिए कि-''मौत के काल का भी तो पता नहीं है और यह तो पता है ही नहीं कि कौन-सा श्वॉस अन्तिम श्वॉस है, तब क्यों न अभी से लेकर पवित्र रहा जाय? यह सोचना कि मैं तो अभी युवक हूँ, कुछ तो काम-वासना का भोग करके अनुभव कर देखूँ'', ऐसा सोचना तो महा मूर्खता है,

क्योंकि काल तो वृद्ध अथवा युवक किसी को बताकर नहीं आता। इन विकारों की अग्नि से हुए घाव तो अभी तक मनुष्य को लगे हुए हैं, फिर काम-वासना को अनुभव करके देखने का प्रश्न ही क्यों उठता है? इसलिए मनुष्य को आज ही से नहीं बल्कि अभी से ही काम पर विजय प्राप्त करने और जितेन्द्रिय बनने का पुरुषार्थ करना चाहिए क्योंकि पुरुषार्थ का यह अवसर फिर नहीं मिलेगा और विकर्मों का बोझ भी बढ़ जायेगा और जो बुरे संस्कार साथ जायेंगे उनके फलस्वरूप भविष्य में भी तो वही बुरा हाल होगा। इसलिए अच्छे काम में देर नहीं करनी चाहिए क्योंकि अब ही मनुष्य से देवता बनकर 21 जन्मों के लिए स्वर्गिक स्वराज्य प्राप्त करने का अवसर है।

क्रोध को मिटाने की युक्तियाँ

कहावत है कि जिस घर में क्रोध होता है, उस घर में पानी के घड़े भी सूख जाते हैं। परन्तु वास्तव में पानी तो क्या, क्रोधी मनुष्य का खून भी सूख जाता है। अत: मनुष्य को कोध नहीं करना चाहिए बल्कि क्रोध का निरोध करना चाहिए।

जब मनुष्य को क्रोध आता है तब वह परिणाम को नहीं सोच सकता। इसलिए क्रोध से बहुत भयंकर परिणाम निकलते हैं। क्रोध के कारण आन की आन में घर जल कर खाक हो जाते हैं और देश वीरान हो जाते हैं। क्रोध ने संसार में सुख के पेड़ों को उखाड़ कर बहुत ही उजाड़ा है। अत: जीवन को दु:खी करने वाला और संसार को नर्क बनाने वाला यह जो क्रोध नाम का भूत है, इस भूत से बचना चाहिए क्योंकि यही कलह-क्लेश का कारण बना हुआ है।

क्रोध मनुष्यों को अनेकानेक रूपों में सताता है। उद्वेग, द्वेष, ईर्ष्या, बदले की भावना, रुष्ट होना, हिंसा, वैर-विरोध की भावना आदि-आदि यह सभी क्रोध ही के भिन्न-भिन्न रूप हैं। यह सभी मनुष्यों को अशान्त करने वाले हैं। इसलिए इन सभी से छुटकारा पाना चाहिए।

क्रोध रूपी बुखार के लिए इलाज

देखा गया है कि प्राय: मतभेद से तंग आकर मनुष्य क्रोधान्वित हो जाता है। जब दूसरे मनुष्य किसी के विचारों से सहमत नहीं होते तो उसे क्रोध का बुखार चढ़ने लगता है। इस बुखार को उतारने वाली दवाई एक ही है और वह दवा अचूक भी है।

मत-भेद होने पर मनुष्य को सोचना चाहिए कि वर्तमान कलियुगी सृष्टि से मत-मतान्तरों का वृक्ष तो खूब वृद्धि पा चुका है और भिन्नता अथवा विविधता तो इस सृष्टि का नियम है। जैसे वृक्ष की एक ही शाखा के दो पत्ते

भी पूर्णतया एक जैसे नहीं होते वैसे ही सृष्टि रूपी वृक्ष का वृत्तान्त है, अत: दो मनुष्यों की कृति और आकृति बिल्कुल एक-जैसी होनी असम्भव है। वृक्ष के पत्ते और टहनियाँ तो अनेक होती हैं। हाँ, वृक्ष का बीज और तना एक ही होता है। अत: यह जो कल्प-वृक्ष रूपी संसार है, उसके जो बीजरूप परमात्मा हैं, वही एक हैं और सृष्टि-वृक्ष में जो पहला युग (सतयुग) था, उसमें एक मत, एक धर्म और एक राज्य था। अत: एकता और शान्ति लाने के लिए या क्रोध का ताप (Temperature) उतारने के लिए मनुष्य को बीजरूप परमात्मा की और सतयुगी देवी-देवताओं की स्मृति में रहना चाहिए और वर्तमान मतभेदों के बारे में सोचना चाहिए कि– "यह तो कलियुग का लक्षण है, यह सृष्टि तो अब विनाश को प्राप्त होने वाली है।" इस प्रकार सोचकर मनुष्य को अपनी मस्ती में रहना चाहिए कि अब तो खुशी के दिन अथवा सतयुग का सुहावना समय आने वाला है। अत: धीरज धरो, क्रोध करोगे तो उस दुनिया में नहीं जा सकोगे, अथवा अगले जन्म में फिर क्रोधियों का ही सम्बन्ध मिलेगा।

क्षीर-खण्ड बनाने का ख्याल

इसके अतिरिक्त यह भी विचार करना चाहिए कि सतयुग और त्रेतायुग में तो शेर और गाय एक-घाट पानी पीते थे। तो क्या हम मनुष्य इतने पतित हो गये हैं कि एक ही परमपिता परमात्मा की सन्तान परस्पर भाई-भाई हैं, वह भी एक-साथ नहीं रह सकते? सतयुग में तो यह संसार क्षीर-सागर था, और मनुष्य का स्वभाव दिव्य था। तो क्या अब क्षीर-सागर की बजाय लून-पानी अर्थात् मधुर की बजाय खारे स्वभाव वाला बनना हम देव सन्तानों को शोभा देता है?

कमल बनो, काँटा न बनो

देवताओं की हरेक इन्द्रिय के नाम के साथ तो 'कमल' शब्द का प्रयोग

होता है। जैसे कमल-हस्त और कमल-नेत्र आदि-आदि। तो क्या हमें कमल की बजाय काँटे-जैसे स्वभाव वाला बनना उचित है? क्रोध तो आसुरी लक्षण है, अत: यदि हम क्रोध करते रहेंगे तो देवी या देवता कैसे बनेंगे और स्वर्ग के राज्य-भाग्य को कैसे प्राप्त कर सकेंगे? इस प्रकार ज्ञान-प्रकाश जगाने से क्रोध-रूपी अन्धकार भाग जायेगा।

हिसाब-किताब का विचार

कई बार दूसरे किसी व्यक्ति के अयुक्त व्यवहार को देखकर भी मनुष्य को क्रोध आ जाता है। परन्तु यदि कोई मनुष्य अनुचित व्यवहार करता है, तो हमें उसे अपने ही कर्मों का हिसाब-किताब समझना चाहिए। हमें सोचना चाहिए कि अगर हमने ही कभी खोटा कर्म न किया होता तो हमसे कोई खोटा बोल बोल न सकता। अत: शान्त रहने से ही दूसरों पर हमारा अच्छा प्रभाव पड़ सकता है वर्ना क्रोध की अग्नि बुझेगी ही नहीं।

क्रोध को एक कमज़ोरी समझो

क्रोध पैदा होने का एक कारण यह है कि मनुष्य दूसरों की कमज़ोरी या भूल देखकर उसे बर्दाश्त नहीं करता। परन्तु वास्तव में दूसरों की कमज़ोरियों अथवा त्रुटियों को देखकर क्रोध नहीं करना चाहिए। बल्कि अपने क्रोध के संस्कार को देखकर अपनी कमज़ोरी और त्रुटि की ओर ध्यान देना चाहिए। यदि कोई मनुष्य भूल करता है अथवा किसी बात को नहीं समझता और उसे नहीं मानता अथवा विरोध करता है तो प्रेम से उसमें परिवर्तन लाना चाहिए अथवा सद्भावना से, युक्ति से और तर्क से उसे समझाने का प्रयत्न करना चाहिए, क्योंकि इससे ही अपना आत्मिक-बल बढ़ता है और शांति के खज़ाने में वृद्धि होती है और दूसरा भी सुधरता है। यदि आप अपने क्रोध के संस्कार हटाने में अयोग्य हैं तो दूसरे किसी की अयोग्यता को देखकर उसे कैसे डाँट सकते हैं? ईश्वरीय ज्ञान तो यह कहता है कि भूल करने वाले पर क्रोध न

करो बल्कि उसकी सहायता करो। उसे भूल के कूप से निकालो, न कि स्वयं भी क्रोध रूपी भूल करके कूप में गिरो। जबकि हमें दूसरों का क्रोध अच्छा नहीं लगता तो हमें अपना क्रोध भी निकालना चाहिए वर्ना हम स्वयं भी अपराधी ठहराये जायेंगे।

स्नेह-सूचक शब्दों का प्रयोग

क्रोध को मिटाने का एक तरीका यह है कि कुछ स्नेह-सूचक शब्द पक्के कर लो। किसी से बातचीत करते समय-'मित्र', 'मीठे भाई', 'स्नेहमयी माता' और 'आदरणीया बहन', इत्यादि सम्बोधनों का प्रयोग करने की आदत डाल लो। विशेषकर जो विरोधी हो उससे वार्तालाप करते समय तो सद्भावना-पूर्वक इन शब्दों का अवश्य ही प्रयोग करना चाहिए। इससे स्वयं को भी क्रोध नहीं आता और जिससे बात हो रही हो उसका भी क्रोध शान्त हो जाता है।

आत्मा के स्वधर्म की स्मृति

इसके अतिरिक्त, मनुष्य को सोचना चाहिए कि आत्मा का तो स्वधर्म ही पवित्रता और शान्ति है। लोगों ने आज कर्म-काण्ड आदि को अपना 'धर्म' मान रखा है और जीवन के लिए जो उच्च नियम और धारणाएं हैं उनको पुस्तकों में ही बन्द करके रखा है। परन्तु अब जबकि पवित्रता और शान्ति रूपी स्वधर्म को छोड़ने से मनुष्य दु:खी हुआ है, तो उसे इस बात की स्मृति में रहने का अभ्यास करना चाहिए कि–''मैं तो आत्मा हूँ, मैं तो आदि स्वरूप में पवित्र और शान्त हूँ। क्रोध तो मेरा मौलिक स्वभाव और स्वरूप ही नहीं है। क्रोध द्वारा दूसरों को दु:खी करने वाला तो स्वयं भी दु:खी होता है। शान्त रहने वाला दूसरों को भी शान्ति देता है। अत: मैं तो शान्तिपूर्वक ही कार्य करूँगा।'' कार्य की सफ़लता भी शान्ति से होती है क्योंकि धर्म ही से तो जय होती है। जैसे गर्म लोहे को ठण्डा लोहा ही काट सकता है, इसी प्रकार गर्म मनुष्य से ठण्डे होकर बात करने में ही सफ़लता

है। अत: शान्ति का स्वधर्म मानो और अच्छा है कि लोगों से बात शुरू करते समय और अन्त में 'ओम् शान्ति' शब्दों का प्रयोग करो।

हल्का क्रोध भी अपराध है

भारत की सरकार ने तो क्रोध के केवल भयंकर रूप का ही दण्ड निर्धारित किया हुआ है अर्थात् जब कभी कोई मनुष्य क्रोध के अत्यन्त वेग के कारण किसी की हत्या कर देता है अथवा उसे किसी शस्त्र से हानि पहुँचाने का प्रयत्न करता है, तभी यहाँ कानून उसे अपराधी ठहराता है क्योंकि यदि सरकार क्रोध के हल्के रूप को भी अपराध निर्धारित करे तब तो 'कानून बनाने वाले व्यक्ति', न्याय करने वाले जज और मन्त्री आदि-आदि उच्चाधिकारी सभी एक-न-एक दिन अपराधी ठहराये जायेंगे और कानून चलाने वाला भी कोई नहीं रहेगा। अत: लौकिक संस्कारों द्वारा हल्के 'क्रोध वश' किये गए कर्म विकर्म की कोटि में नहीं हैं अथवा कि उसका दण्ड नहीं मिलेगा। बल्कि यह याद रखना चाहिए कि जो सर्वोच्च सरकार अर्थात् परमपिता परमात्मा हैं उनके आदेशों के अनुसार तो थोड़ा-सा क्रोध करना भी दण्ड का भागी बनना है। वास्तव में क्रोध के अशान्ति रूपी फल का थोड़ा बहुत अनुभव तो तत्क्षण भी हो जाता है। क्रोध थोड़ा हो या बहुत, वह अपने लिए तो हर हालत में हानिकारक है ही। मनुष्य को अक्रोधी, शीतल, मधुर और शान्त स्वभाव का बनना चाहिए ।

✡✡✡

लोभ का संस्कार कैसे मिटे

लोभ एक ऐसा विकार है जो कि मनुष्य को मीठा लगता है। अत: जैसे चीटियाँ चास्नी से आकर्षित होकर उसमें फँसती हैं, वैसे ही जिस मनुष्य को लोभ का चसका लग जाता है, वह भी उसी के स्वाद में जीवन खो देता है। परन्तु वह इस जीवन में लूट-खसोट करने के परिणामस्वरूप इस जीवन में नहीं तो अगले जन्म में दु:ख भोगता अवश्य है। वह किसी कंगाल और तिरस्कृत घराने में जन्म लेकर उतना ही दु:ख पाता है क्योंकि मनुष्य का कर्म अविनाशी है।

लोभी नर अतृप्त और अशान्त

लोभी मनुष्य सदा अतृप्त और असन्तुष्ट रहता है। अत: जिसकी प्यास कभी नहीं बुझती, उसे आप इस जीवन में सुखी कैसे कहेंगे? लोभी मनुष्य सदा निन्यानवें के चक्कर में पड़ा रहता है। एक मकान बनाने के बाद उसे दूसरे मकान की चिन्ता लग जाती है। एक कार लेने के बाद वह हरेक बच्चे के लिए अलग-अलग कार लेने की फ़िक्र करने लगता है। अत: आप सोचिये कि जो व्यक्ति कभी तृप्त न हो और सन्तुष्ट न हो, बल्कि सदा कमी ही महसूस करता रहे उसे 'सच्चा सुखी' मानना ही भूल है।

लोभी मनुष्य में ईर्ष्या भी बहुत होती है। वह दूसरे के लाभ और धन को अपने धन से अधिक होता देख कर सहन नहीं कर सकता। वह अपने जैसे व्यापारी को बड़ा व्यापारी बनते देख कर उससे ईर्ष्या और द्वेष करने लगता है। तो जिसमें ईर्ष्या की अग्नि और द्वेष का दावानल जल रहा है, वह क्या सच्चे सुख को प्राप्त कर सकता है?

पुनश्च, शुरू में तो हो सकता है कि मनुष्य को केवल धन का ही लोभ हो परन्तु धीरे-धीरे उसकी वह लोभ-वृत्ति सीमित नहीं रहती बल्कि धन के अतिरिक्त दूसरी चीज़ों को भी अपने हाथ करना चाहता है।

उदाहरण के तौर पर मान लीजिए कि आज कोई मनुष्य धन का लोभ करके धनी बन गया है, तो आप देखेंगे कि अब वह यह भी चाहता है कि मित्र-सम्बन्धियों में उसका अधिक मान हो। अब धनी के अलावा मानी बनने का लोभ उसे और लग जाता है। कल वह यह चाहता है कि अगर उसके लड़के का विवाह हो तो उसके ससुराल वाले बहुत दहेज दें ताकि कहीं ऐसा न हो कि लोगों को यह कहने का मौका मिल जाये कि इसने इतना बड़ा सेठ होकर भी किसी निर्धन घराने में लड़के का रिश्ता किया है। अब उसे अहंकार भी आ घेरता है। वह सोचता है कि मैं एक बड़ा सेठ हूँ, बड़े ही लोगों से मेरा रिश्ता-नाता भी है और मित्र-सम्बन्धियों में मेरा मान भी है। इस प्रकार नित्य-प्रति जिसका लोभ बढ़ता जाय और उसके परिणाम-स्वरूप उसमें ईर्ष्या, द्वेष, अहंकार आदि की भावना भी आती जाय, उस नर के जीवन को आप सच्चे सुख का जीवन कैसे मानेंगे? सुख-सुविधा के साधन तो लोभी मनुष्य के पास इकट्ठे हो जाते हैं परन्तु सन्तोष रूपी धन से वह सदा वंचित रहता है। मनुष्य को मन की शान्ति न हो तो उसे सुविधा-साधन भी अखरते से हैं। यदि मनुष्य के पास भोग्य पदार्थ बहुत हों तो उन्हें भोगते-भोगते वह स्वयं भी भोगा जाता है। इसलिए कहावत है कि --''मनुष्य भोगों को नहीं भोगता बल्कि भोग्य पदार्थ ही उसके तन की शक्ति और आयु आदि को भोग लेते हैं।'' अत: जो जितना बड़ा लोभी होता है। वह उतना ही अशान्त रहता है; उसे उतनी ही कम नींद आती है क्योंकि वह नींद में भी कमाई की ही सोचता रहता है। अत: मनुष्य को लोभ छोड़ना चाहिए और सन्तोष रूपी धन की रक्षा करनी चाहिए।

लोभ छोड़ने का यह भाव नहीं है कि धन नहीं कमाना चाहिए। धन तो एक आवश्यक चीज़ है परन्तु भाव यह है कि धन का लोभ बुरी चीज़ है। मिलावट से, बनावट से, ब्लैक से, कम तोल कर, बहुत अधिक दाम लेकर,

मज़दूर को कम मज़दूरी देकर, दूसरे के व्यापार को हानि पहुँचा कर, किसी जायज़-नाजायज़ तरीके से सदा धन-माल ही इकट्ठे करने में लगे रहना और अधिक के फेर में सदा अतृप्त रहना—ऐसा लोभ मनुष्य को अभी भी अशान्ति देता है और आगे चलकर इस दुनिया के कोतवाल, सरकारी इन्स्पेक्टर या अदालत के काबू में या फिर धर्मराज की अदालत के काबू में ले ही जाता है। अत: मनुष्य को सदा नेक तरीके से उचित ही कमाई करनी चाहिए। इससे मनुष्य को बहुत आत्मिक बल मिलता है और प्रभु से उसकी प्रीति बढ़ती है। वर्ना जो नींद में भी पैसे की प्रीति से प्रेरित रहेगा, वह प्रभु से सच्ची प्रीति कैसे जोड़ सकेगा? उसे तो योग में भी दुकान, ग्राहक और पैसे की बात याद आयेगी। वह योगी जीवन का सच्चा सुख तो लूट न सकेगा?

प्राकृतिक पदार्थों के लोभ में आकर प्रभु को भूलना दुर्भाग्य को न्योता देना है

अत: मनुष्य को यह सोचना चाहिए कि-'यह कलियुगी संसार तो तमोगुणी है, यह तो नाश को प्राप्त होने वाला है। जीवन-निर्वाहार्थ भले ही मुझे आर्थिक साधन जुटाना चाहिए परन्तु प्रकृति के पीछे भागकर प्रभु से दूर होते जाना ठीक नहीं है। धन तो एक साधन है, यह सिद्धि तो नहीं है। अत: इसी ही के बारे में सोचते रहना और जीवन का सारा मूल्यवान समय इसके पीछे लगाना बुद्धिमता नहीं है। अगर बहुत धन-माल इकट्ठा कर भी लिया तो भी क्या भरोसा है कि मेरा जीवन इसे भोगने के लिये रहेगा भी? फिर अब जबकि सृष्टि के महाविनाश के चित्र मैं स्पष्ट रूप से देख रहा हूँ, तब मुझे लोभ से लेना ही क्या है?''

प्राय: मनुष्य यह सोचता है कि अभी तो खूब धन कमा लूँ, बुढ़ापे में ईश्वर को याद करूँगा। परन्तु क्या बुढ़ापे में मनुष्य लालच छोड़ देता है? जीवन-भर लालच करते-करते तो बुढ़ापे में लोभ का संस्कार और भी अधिक

पक्का हो जाता है। इसलिए कहावत मशहूर है कि "आप भया बूढ़ा तृष्णा भई जवान।" अत: यह तो अभी छोड़ने से छूटेगा। अभी पालने से तो वह बड़ा ही होगा। अत: अब मनुष्य को चाहिए कि आने वाले महाविनाश को देखें। अब जबकि सृष्टि की चौथी अवस्था है अर्थात् कलियुग का अन्तिम चरण है तो इस ज्ञान की दृष्टि से तो अभी हम सभी वृद्ध अवस्था में ही हैं। अत: अब तो सभी को परमपिता परमात्मा की ही स्मृति में रहने का अभ्यास करना चाहिए।

याद रखो कि अब अविनाशी कमाई का समय है

पुनश्च, आज यद्यपि मनुष्य धन का लोभ भी करता है तथापि वह इतना धन तो इकट्ठा नहीं कर सकता कि जो जन्म-जन्मान्तर उसके सुख का साधन बने। सतयुग की सुख-सुविधा और धन-सम्पत्ति की तुलना में तो वर्तमान समय का धन-दौलत कुछ भी नहीं है। अत: अब जबकि मनुष्य को यह ज्ञान मिला है कि सतयुग के अखण्ड और अपार सुख का आधार पवित्रता और दिव्य-गुण थे जो कि मनुष्य ने संगम-युग में परमपिता परमात्मा से योग-युक्त होकर प्राप्त किये थे। तो अब मनुष्य को पवित्र और दिव्य गुण-सम्पन्न बनने का पूरा पुरुषार्थ करना चाहिए। अब जो उसकी लोभ वृत्ति है, उसे ज्ञान के संचय व योग की कमाई में लगा देनी चाहिए।

लोभी मनुष्य दिव्य सुखों से वंचित

लोभी मनुष्य में सन्तोष, त्याग-वृत्ति, अनासक्ति, उपरामता, सेवा-भाव आत्मिक-दृष्टि आदि-आदि दिव्य गुण नहीं होते और जिसमें सम्पूर्ण दिव्य गुण न हों वह देवता या सतोप्रधान नहीं बन सकता और इसलिए वह स्वर्गिक सुखों का अधिकारी नहीं हो सकता। परमपिता परमात्मा द्वारा रची हुई सतयुगी स्वर्गिक सृष्टि का सुख तो वही प्राप्त करता है जो परमात्मा से प्रीति लगाता है और अन्य मनुष्यात्माओं के प्रति भी सद्भावना रखता है। लोभी मनुष्य की

बुद्धि तो धन-सम्पत्ति के पीछे भटकती है। अत: इन बातों को ध्यान में रखते हुए मनुष्य को चाहिए कि वह योगी बने और दिव्य-गुण धारण करे ताकि उसे सतोप्रधान सृष्टि का सुख प्राप्त हो।

शान्ति की जो तृष्णा, ज्ञानामृत ही बुझाय।
काम-क्रोध जो अग्नि, आह! जन्म-जन्म जलाय।
लोभी नर कंगाल है, दु:ख पावत दु:ख देत,
निर्लोभी सदा-सुखी, ईश्वर हरदम देत।
मोह के बन्धन कड़े, मोह में सबका श्वाँस,
एक ईश्वर से मोह करे, तो छूटे दु:ख की फाँस।

मोह-ममता

भगवान् धर्म-ग्लानि के समय अवतरित होकर मनुष्य-मात्र को जो गीता-ज्ञान देते हैं, उसका उद्देश्य ही मनुष्य को नष्टोमोहा तथा स्मृतिर्लब्धा बनाना होता है क्योंकि मोह के कारण ही मनुष्य दु:खी होते हैं। मोह-ममता ही मनुष्य को बारम्बार गर्भ-जेल ले जाती है और एक ऐसी दलदल में फंसा देती है कि मनुष्य निकलना चाहते हुए भी उससे निकलना मुश्किल समझता है। जैसे विष्ठा का कीड़ा निष्कृष्ट स्थान पर होते हुए भी एक सूक्ष्म एवं निकृष्ट आकर्षण में बंधा-सा होने के कारण मोरी में पड़ा रहता है और वहाँ से निकलना ही नहीं चाहता, वैसे ही मोह में पड़े हुए मनुष्य का भी यही हाल होता है। कफ़, रक्त और हड्डी-माँस के शरीर को वह एक जोंक अथवा किलनी की तरह लगा रहता है और उससे हटाये जाने पर समझता है कि- ''मैं मारा गया।'' कैसा आश्चर्य है कि बारम्बार भाड़ में पड़ने पर भी वह स्वयं को मोह के भार से मुक्त नहीं करता।

मोह वाला मनुष्य परमात्मा के विपरीत है

जब मनुष्य का अपने पुत्र-पौत्रों में, धन-दारा में, घर-घाट में अथवा अपने तन आदि में मोह होता है तो उसकी बुद्धि उन्हीं में उलझ जाती है। उसकी बुद्धि उन्हीं से प्रीति करती है और परमपिता परमात्मा से विपरीत हो जाती है और इस कारण उसे मुक्ति तथा जीवन-मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती, उसे योग का आनन्द नहीं मिलता बल्कि 'अन्ते या मति सा एवं गति' के नियम के अनुसार उसे फिर उन्हीं सम्बन्धियों के यहाँ जन्म लेकर दु:ख भोगना पड़ता है, वह पुन:-पुन: नरकवासी होता है। इस प्रकार मोह की रस्सियाँ यद्यपि सूक्ष्म हैं और दिखाई नहीं देतीं तथापि वे स्थूल रस्सियों और ज़ंजीरों से भी अधिक कड़ी हैं और जन्म-जन्मान्तर तक नहीं टूटतीं। स्थूल रस्सियाँ तो मनुष्य को बाहर से बाँधती हैं, परन्तु आश्चर्य तो यह है कि फिर भी वह इन रस्सियों से

छूटने की कोशिश नहीं करता।

मोह से मृत्यु

मोह वाला मनुष्य सत्य-असत्य में न तो निर्णय कर पाता है और न ही मृत्यु पर विजय प्राप्त कर पाता है बल्कि मृत्यु से पहले भी वह कई बार ममता के मारे मरता है। अत: मोह भले ही दिखाई देने में छोटा विकार है परन्तु वास्तव में वह सबसे खोटा है इसलिए अब भगवान कहते हैं कि-अब मोह को नष्ट करके अर्थात् अन्यान्य से बुद्धि को हटाकर स्मृतिर्लब्धा हो जाओ।

मोह का कारण और उसका निवारण

मनुष्य मोह उससे करता है जिससे कि वह कुछ लाभ समझता है। बिना लाभ या स्वार्थ के मनुष्य किसी से भी मोह नहीं करता। जो चीज़ अथवा जो व्यक्ति मनुष्य को हानिकारक अथवा दु:खदायी मालूम हो, उससे तो मनुष्य घृणा करने लग जाता है अथवा उसे तो वह त्याग देता है। मनुष्य जब समझता है कि अमुक व्यक्ति मेरा सहारा है, अथवा अमुक व्यक्ति से मेरा फलाँ कार्य सिद्ध होगा तो उससे ममता का नाता जोड़ लेता है, या जिस चीज़ को वह स्वयं रचता है, उसमें उसकी ममता या उसका मोह होता है। परन्तु जबकि मनुष्य की अपनी देह भी उससे छूटने वाली है, तो सोचना चाहिए कि जिससे मैं मोह-ममता कर रहा हूँ, वह भी मुझसे छूटने ही हैं; तब भला उनसे मोह कैसा? जबकि इस संसार में सब चीज़ें अस्थिर; परिवर्तनशील और विनाशी हैं तो उन परिणामी चीज़ों में मोह करना तो गोया स्वयं को दु:खी करने की युक्ति रचना है। अत: परमपिता परमात्मा कहते हैं कि यह माया-मोह दु:ख देते हैं, अब इनको छोड़ो।

मोह ममता कैसे छोड़ें

कई लोग कहते हैं कि -''हम तो मोह को छोड़ना चाहते हैं परन्तु मोह हमें नहीं छोड़ता।'' परन्तु उनका यह कथन तो ऐसा ही है जैसे कि उस तोते

का जिसके बारे में एक लघु कथा इस प्रकार है कि वृक्ष की टहनी को पकड़कर वह बैठा हुआ था और कह रहा था-'अरे कोई मनुष्य मुझे इससे छुड़ाये।' उसके इस आलाप को सुनकर किसी समझदार मनुष्य ने उससे कहा-'अरे शुक! टहनी को पकड़ तो तुमने स्वयं ही रखा है, इसलिए तुम स्वयं ही उसे छोड़ दो ना? अरे शुक, तुम ही इसे छोड़ोगे तभी तो वह छूटेगी।' इस प्रकार, आज मनुष्य ने अपने मोह रूपी पंजे से व्यक्तियों और वस्तुओं को पकड़ तो स्वयं रखा है परन्तु वह कहता है कि मुझे इनसे कोई छुड़ाये!

ऐसे ही मनुष्य के लिए अब परमपिता परमात्मा कहते हैं कि -"हे वत्स! यह अन्तिम जन्म है, अब तो केवल दो घड़ियों का खेल बाकी है। अब विनाश की आग भड़क रही है जिसमें सबका अन्त हो जाना है। अत: अब साहस रखकर जीते-जी पहले से ही जीवन को मेरे हवाले कर दो। यह सब छूटना तो यों भी है ही, अत: यदि आप अब न छोड़ोगे तो कुछ भी प्राप्ति नहीं होगी।

भगवान कहते हैं-"यों तो सभी लोग कहते हैं कि हम परमपिता परमात्मा के बच्चे हैं। परन्तु प्रेक्टिकल रीति तो उनका मुझसे कुछ भी सम्बन्ध अर्थात् योग नहीं है। मेरे साथ प्रेक्टिकल रीति से सम्बन्ध जोड़ने से ही तो मनुष्य भाग्य बनाने के योग्य बनता है। पिता के साथ प्रेक्टिकल सम्बन्ध होने से ही तो पुत्र को पैत्रिक सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। अत: शाहों के भी शाह मुझ त्रिलोकपति परमपिता के साथ सम्बन्ध जोड़ो, मैं आप को जन्म-जन्मान्तर के लिए मालामाल कर दूँगा और धनवान बना दूँगा। हे वत्स, अब मैं जिस सतयुगी सृष्टि अथवा बैकुण्ठ की स्थापना कर रहा हूँ, अब उससे मन का स्नेह जोड़ो और विनाश होने वाले इस संसार से मन को मोड़ लो क्योंकि सतयुगी सृष्टि के सम्बन्ध सुख देने वाले हैं जबकि आज की सृष्टि के सम्बन्ध दु:ख देने वाले हैं। हे वत्स, अगर अपनी आसक्ति या ममता के वश अथवा कर्म-बन्धन की लागत (लगाव) से, मन से, वचन से काया से कर्म करोगे तो उससे

कुछ भी उच्च पद (देव-पद) की प्राप्ति नहीं होगी बल्कि अवस्था और ही अधिक मुरझा जायेगी क्योंकि जिस व्यक्ति में मोह की रग है या ममता का स्वभाव है, उसे 'पवित्र' नहीं कहा जा सकता और जो पवित्र नहीं है वह सम्पूर्ण सुख और शान्ति को भी प्राप्त नहीं कर सकता। अत: हे वत्स, अब जबकि कर्मातीत अवस्था को प्राप्त करना है तो तू देह सहित देह के सभी सम्बन्धों से मन से मोह का सन्यास करके अब एक मेरा ही सहारा ले, तो मैं तेरी सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले लूँगा।''

❋❋❋

अहंकार कैसे छूटे?

हरेक मनुष्य जानता है कि इस कलियुगी संसार में धन अथवा सम्पत्ति अस्थिर है, यह सदा मनुष्य के हाथ नहीं रहती। तो मनुष्य को अहंकार किस बात का? क्या आप नहीं देखते कि आज एक व्यक्ति धनाढ्य होता है, कल उसकी दुकान को आग लग जाती है और वह फ़कीर बन जाता है। आज कोई लखपति है, कल उसका दिवाला निकल जाता है। आज किसी के पास सम्पत्ति है, कल उसकी मृत्यु हो जाती है और उसका धन धरा ही रह जाता है अथवा उसकी दुर्घटना हो जाती है और उसके पास धन होते हुए भी वह दु:खी होता है, तो धन का अहंकार क्यों? मनुष्य साक्षी होकर धन का प्रयोग तथा सदुपयोग करे, परन्तु अहंकार तो तब करे, जब धन कभी उससे छूटना ही न हो या उसे मरना ही न हो। फिर जबकि मनुष्य को यह ज्ञान मिल रहा हो कि अब इस कलियुगी सृष्टि में ऐसा भयानक समय आने वाला है और अब महाविनाश होने वाला है और इस धन की यह हालत होनी है कि जिसके बारे में कहा गया है कि-

किसी की दबी रही धूल में, किसी की राजा खाय,
किसी की चोर लूट ले जाय, किसी की आग जलाय।

तो अहंकार का क्या परिणाम होगा? भस्मसात होने वाली वस्तुओं का अभिमान तो निरी अज्ञानता ही है।

कुल जाति आदि का अहंकार कैसे मिटे?

कुल, जाति और देश का अहंकार भी तो देह-अभिमान पर आधारित है। आत्मा का कुल तो एक 'ईश्वरीय-कुल' है और उस नाते से सभी आत्माएँ भाई-भाई हैं, सभी आत्माओं का देश भी एक परमधाम, परलोक अथवा ब्रह्मलोक है और उनकी जाति भी एक 'निराकार जाति' है अथवा 'ज्योति-बिन्दु' जाति है। परन्तु स्वयं को 'देह' निश्चय करने के कारण ही किसी को

यह अहंकार है कि मेरा दैहिक जन्म उच्च है क्योंकि मैं एक उच्च जमींदार कुल का हूँ, मैं वीरता में प्रसिद्ध राजपुताने अथवा राजस्थान प्रदेश का हूँ, मेरी जात (जाति) ठाकुर है, आदि-आदि। यदि ईश्वरीय कुल की, ज्योति-बिन्दु जाति की परमधाम रूपी शान्ति देश की तथा आत्मिक नाते की स्मृति रहे तो उसे इस छोटे-से-देश-कुल जाति आदि का मिथ्या अहंकार हो ही नहीं सकता।

इस प्रकार धन और पोज़ीशन (Position) का अथवा मान और शान का सम्बन्ध भी देह से ही है। देह रूपी वस्त्र धारण करके पार्ट में ही कोई बड़ा वकील, कोई डॉक्टर या कोई नेता है। परन्तु आत्मिक दृष्टि से तो सभी भाई-भाई हैं। उस नाते में पोज़ीशन का क्या अभिमान? धन का सम्बन्ध भी देह से ही है। देहान्त होने के बाद मनुष्य धन का मालिक थोड़े होता है? जब आत्मा परमधाम में थी तो उसके पास कौन-सा धन था? परमधाम में तो सभी आत्माएँ 'बिन्दु-रूप' ही होती हैं, वहाँ धन का क्या काम और क्या नाम? देह में आने के बाद ही धन-सम्पत्ति की आवश्यकता या आसक्ति होती है। अत: जो मनुष्य अब स्वयं को एक 'ज्योति-बिन्दु आत्मा' निश्चय करने वाला और धन-जन में आसक्ति को छोड़ कर वापस परमधाम लौटने के संकल्प वाला होगा, उसी में धन, पोज़ीशन आदि का भी अभिमान नहीं होगा।

पोज़ीशन और मान-शान का अहंकार कैसे मिटे?

हम आत्माओं की जो वास्तविक पोज़ीशन है, हमें उसमें रहना चाहिए। हमारी वास्तविक पोज़ीशन तो यह है कि हम त्रिलोकीनाथ, सर्वशक्तिमान् परमपिता की सन्तान हैं। उस पोज़ीशन को याद रखते हुए हमें अपनी लौकिक पोज़ीशन में भी रहना है, परन्तु उसे सृष्टि रूपी विराट ड्रामा का एक पार्ट समझ कर निभाना है, उस पोज़ीशन के अभिमान में नहीं आना है। उदाहरण के तौर पर मान लीजिए कि एक ऐक्टर को स्टेज पर राजा का पार्ट बजाने के लिए कहा गया। तो वह मंच पर साक्षी होकर राजा का पार्ट तो बजायेगा

परन्तु वह इस बात को भी सचेत (Consciously) या अर्द्ध सचेत (Sub-consciously) रूप से याद तो रखेगा ही कि-''मैं वास्तव में राजा नहीं हूँ, मैं तो वास्तव में फलाँ व्यक्ति हूँ, राजा का तो मैं कुछ समय के लिए ही पार्ट बजा रहा हूँ।'' यदि वह सचमुच अपने को राजा ही मानने लगे और आगे-पीछे भी सभी से वैसे ही व्यवहार करने लगे तो उसको कौन मानेगा? तब तो उसके बारे में सब सोचने लगेंगे कि आखिर इसको क्या हुआ है। इसी प्रकार हम वास्तव में तो परमधाम से ही आई हुई सब आत्माएं ही हैं, शरीर रूपी वेष-भुषा धारण करके कोई वकील का, कोई डॉक्टर का, कोई न्यायाधीश का-सब अपना-अपना पार्ट बजा रही हैं परन्तु हमारे मन में यह ध्यान तो रहना ही चाहिए कि वास्तव में हम इस पार्ट से न्यारे कौन हैं (आत्मा हैं)? उस निराकारी आत्मिक स्थिति या स्मृति में जब हम रहेंगे, तभी हम निरहंकारी भी रहेंगे। निराकारी आत्मिक स्थिति या स्मृति में नहीं रहेंगे तो हम निरहंकारी स्थिति में भी नहीं रह सकेंगे।

हम तो निमित्त (Trustee) हैं और सेवक हैं

अहंकार से मुक्त होने के लिए हमें यह सोचना चाहिए कि हम तो सतयुगी सृष्टि की स्थापना के कार्य में कल्याणकारी परमपिता के साथ निमित्त हैं। जो किसी कार्य में स्वयं को 'निमित्त' मानता है, उसे तो लाख बातें सुननी और सहन करनी पड़ती हैं। उसे तो बहुत ही मधुरता से और झुक कर व्यवहार करना पड़ता है ताकि कोई उससे नाराज़ न हो जाये। वह ख्याल रखता है कि ''मेरे व्यवहार के कारण से कोई आत्मा ईश्वर से विमुख न हो जाये। मैं कल्याण की बजाय किसी के अकल्याण के निमित्त न बन जाऊं।'' अत: आपको यदि यह याद रहे कि मैं तो दूसरों के कल्याण के ईश्वरीय कार्य में निमित्त हूँ, तो भी आप में नम्रता का गुण आयेगा और अहंकार भी मिट जायेगा!

अतएव सुख-शान्ति के अभिलाषी को चाहिए कि अहंकार को छोड़े क्योंकि अहंकार से क्रोध पैदा होता है और क्रोध के वश हुए मनुष्य की निर्णय-शक्ति, विचार-शक्ति अथवा सूझ-बूझ नष्ट हो जाती है और जिसकी बुद्धि तथा स्मृति नष्ट हो जाती है वह मनुष्य आधे-पागल के समान व्यवहार करता है। अहंकारी मनुष्य में न ज्ञान टिक सकता है, न ही उनमें दूसरे सद्गुणों की धारणा हो सकती है, न ही वह दूसरे के मन में प्रेम तथा सम्मान का स्थान प्राप्त कर सकता है। बल्कि अहंकारी मनुष्य में जो थोड़े-बहुत अच्छे गुण होते हैं, वे भी अहंकार के नीचे छिप जाते हैं, लोगों की दृष्टि में तो उसका अहंकार ही खटकता है।

अन्न-शुद्धि द्वारा मन की शुद्धि

आहार का मनुष्य के विचार और आचार से गहरा सम्बन्ध है। इसी अनुभव पर आधारित यह उक्ति प्रसिद्ध है कि-''जैसा अन्न वैसा मन'' अथवा ''जैसा पानी वैसी वाणी होती है।'' अत: पवित्रता के इच्छुक को अथवा प्रभु की लग्न में मग्न होने की इच्छा वाले मनुष्य को अपने आहार पर भी ज़रूर ध्यान देना चाहिए क्योंकि तमोगुणी आहार से विचार भी तमोगुणी होते हैं और आचरण भी तथा इसके फलस्वरूप मनुष्य को दु:ख तथा अशान्ति भी भोगनी पड़ती है। यह बात सर्व-विदित है कि जब कोई मनुष्य शराब का अथवा अन्य किसी मादक पदार्थ का सेवन करता है तो उसे नशा चढ़ा रहता है, उसकी अक्ल मारी जाती है, वह मनुष्य क्रोध करता है और लड़ाई-झगड़ा करने पर उतारु रहता है। अत: कई देशों की सरकारों ने भी नशाबन्दी कानून बनाये हुए हैं और ऐसे-ऐसे पदार्थों पर प्रतिबन्ध भी लगाया हुआ है क्योंकि वास्तव में यह मनुष्य का आहार या उसके लिए पेय पदार्थ नहीं हैं बल्कि वर्जित पदार्थ हैं। अब, जैसे शराब का मन पर बुरा प्रभाव पड़ता है अथवा अन्य मादक पदार्थों से क्रोध अथवा नशे की हालत रहती है, वैसे ही अन्य भी कई ऐसे पदार्थ हैं जिनसे मनुष्य के मन में उत्तेजना होती है अथवा विकार उत्पन्न होते हैं। जैसे शराबी को कई बार अपनी भी सुध-बुध नहीं रहती, उसी प्रकार तमोगुणी आहार वाले मनुष्य को भी यह स्मृति नहीं रहती कि मैं वास्तव में कौन हूँ, इस संसार रूपी सराय में मैं कहाँ से आया हूँ और मुझे कहाँ जाना है तथा क्या करना है? अत: इस स्मृति में रहने के लिए, अर्थात् आत्म-स्वरूप में तथा परमपिता परमात्मा की स्मृति में स्थित होने के लिए तथा मन को विकारों

से सुरक्षित रखने के लिए अनुकूल आहार पर ध्यान देना ज़रूरी है। जैसे कई देशों की सरकार शराब इत्यादि पर पाबन्दी लगाती है, वैसे ही इस विश्व की जो सर्वोच्च सरकार परमपिता परमात्मा हैं, उनकी ओर से भी तमोगुणी और रजोगुणी आहार पर प्रतिबन्ध है क्योंकि अन्न का मन पर गहरा प्रभाव पड़ता है।

तमोगुणी, रजोगुणी और सतोगुणी आहार

अत: हमें कौन सा आहार करना चाहिए और कौन सा स्वीकार नहीं करना चाहिए, यह बात भी समझना ज़रूरी है। प्राय: आहार को सतोगुणी, रजोगुणी और तमोगुणी तीन श्रेणियों के अन्तर्गत माना जाता है। जितने भी उत्तेजक, मादक, बासी, चटपटे, गरिष्ठ अर्थात् देर से हज़म होने वाले, सड़े हुए या निद्रा अथवा आलस्यादि पैदा करने वाले पदार्थ हैं, वे तमोगुणी माने जाते हैं। माँस, मछली, लहसन, आदि भी इस श्रेणी के अन्तर्गत हैं। शराब, बीड़ी और सिगरेट—ये सभी तमोप्रधान हैं और मनुष्यात्मा का अधोपतन करने वाले हैं। इस प्रकार के पदार्थ योगाभ्यास में बहुत बाधक होते हैं। ये मलेच्छों का आहार है। मनुष्य को चाहिए कि इनको त्याग दें। इसी प्रकार, स्वाद को प्रधानता देकर, जीभ की रसना के लिए बनाए गये, इन्द्रियों के वश होकर खाये जाने वाले और जीवन में भोग-विलास की भावना पैदा करने वाले अथवा भारी पदार्थ रजोगुणी श्रेणी के पदार्थ माने जाते हैं। फल सब्जियाँ, युक्ति-युक्त रीति से पकाया गया अन्न इत्यादि सतोगुणी आहार माना जाता है। अत: जबकि हमें सतोगुणी स्वभाव का बनना है और जबकि हमारा योग मन का अथवा बुद्धि का योग है तो हमें सतोगुणी ही आहार करना चाहिए ताकि निद्रा अथवा आलस्य का विघ्न न पड़े, मन उत्तेजित अथवा मूढ़ न हो और बुद्धि इन्द्रियों के वश न हो जाये क्योंकि बुद्धि के शुद्ध और सचेत न रहने से वह परमपिता परमात्मा से शक्ति और आनन्द पूरी तरह से न ले

सकेगी और ठीक रीति सत्य-असत्य अथवा पाप-पुण्य का निर्णय भी न कर सकेगी।

मन का अन्न पर प्रभाव

अब ध्यान देने के योग्य बात यह भी है कि जैसे अन्न का मन पर प्रभाव पड़ता है वैसे ही मन का भी अन्न पर प्रभाव पड़ता है। मन्दिरों में जो भोग अथवा प्रसाद लगाने की प्रथा है उसके पीछे भी वास्तव में यही मान्यता है। गृहस्थी लोग पुजारी के पास कोई मिठाई अथवा अन्य कोई खाद्य पदार्थ ले जाते हैं, वह पुजारी मूर्ति पर चढ़ावा चढ़ाता है। गृहस्थी और पुजारी दोनों यह मानते हैं कि देवता पवित्र और निर्विकारी होते हैं और उन द्वारा यह पदार्थ मन्सा स्वीकार होने से सतोगुणी अथवा शुद्ध बन जायेगा और प्रसाद के रूप में ग्रहण करने से मन को शान्ति तथा आनन्द देने वाला हो जायेगा। इसी प्रकार, सिक्ख लोग भी भोग लगाते हैं और अन्यान्य धर्मों में भी किसी न किसी रीति से भोग लगाया जाता है। इससे सिद्ध है कि प्राचीन काल से ही यह मान्यता चली आती है कि जैसे अन्न का मन पर प्रभाव पड़ता है, वैसे ही मन का भी अन्न पर प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि भक्त लोग प्रसाद अथवा भोग को इतना महत्व देते और इतना पवित्र मानते हैं कि उसे माँग कर भी लेते हैं। और यदि उसका कुछ अंश कभी पृथ्वी पर गिर भी जाये तो उसे सम्मान-पूर्वक उठा लेते हैं क्योंकि वे समझते हैं कि यह शुद्ध-मन्सा से बनाया या सेवन किया गया पदार्थ है बल्कि इसको पकाते अथवा देते समय भगवान् ही की स्मृति पर ध्यान रखा गया है।

अतः, प्रभु से लग्न लगाने वाले, ब्रह्मचर्य की इच्छा रखने वाले, मन की शान्ति चाहने वाले, अपने स्वभाव को बदलकर दैवी बनाने का पुरुषार्थ करने वाले, ज्ञान और ध्यान की उन्नति की कामना वाले मनुष्य को ऐसे अशुद्ध और तमोगुणी भोजन का सेवन नहीं करना चाहिए। वर्ना उसकी की

हुई कमाई में घाटा पड़ेगा। अपने कल्याण के हेतु उसे यह समझ लेना चाहिए कि लोक-लाज के वश होकर या मित्र-सम्बन्धियों के दबाव डालने से या अपनी ही मानसिक दुर्बलता के कारण यदि वह ऐसा भोजन करेगा तो वह अपना शत्रु आप बनेगा।

कमाने, लाने, बनाने, और खाने वालों की पवित्रता

भोजन की पवित्रता का बहुत माहात्म्य है। अन्न शुद्ध न होने से अन्न-दोष लगता है। यदि कमाने वाला व्यक्ति, जो कि अन्न के लिए धन इकट्ठा करता है, पवित्र मन्सा से नहीं कमाता तो वह भी दोषी है। जो व्यक्ति बाज़ार से माँस, प्याज, लहसन इत्यादि तमोगुण पदार्थ खरीद कर लाता है तो उसका हाथ भी इस दोष में रंग जाता है। और भोजन बनाने वाला ब्रह्मचर्य-व्रत का तथा प्रभु की स्मृति का पालन नहीं करता तो वह भी दोषी है, खाने वाला तो दोषी है ही। खाने वाला स्वयं तमोगुणी भोजन खाकर स्वयं तो पतित होता है ही, परन्तु दूसरों के आगे उदाहरण बनकर दूसरों को भी मानों अशुद्धि के लिए उकसाने अथवा ललचाने के निमित्त बनता है। परन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी पर दबाव डालकर उसे तमोगुणी अथवा अशुद्ध भोजन खाने पर मजबूर करता है तो वह महादोषी है।

अत: अब यह जानकर कि वास्तव में हमारा यह तन भी एक मन्दिर है। इस तन में जो ज्योति-स्वरूप आत्मा विराजमान है वह परमपिता परमात्मा की सन्तान है जो कि वास्तव में दिव्य-वस्तु है और वह पहले देवता पद को प्राप्त थी। अत: हमें कभी भी अशुद्ध आहार को छूना तक भी नहीं चाहिए। बल्कि सच्चे वैष्णव लोग तो देवताओं को शुद्ध वस्तुओं का ही भोग लगाते हैं, हमें भी वैसा शुद्ध भोजन सेवन करना चाहिए। तीन

इंच की जीभ के रस में फंसकर चूहे की तरह संसार रूपी चूहेदानी में फंसना अथवा मछली की तरह अन्धा होकर काल के कांटों में अटकना और धर्म-भ्रष्ट होकर धर्मराज के दण्ड से पिटना मूर्खों का ही तो काम है।

नर अहंकार जो देह का
नरक में ले जाय,
पर अहंकार शुद्ध आत्मा
का स्वर्गधाम पहुँचाय।
विकारी मन को सुख कहाँ
ज्ञान बिन टलें न विकार।
देह-अहंकार जो मिट चले
रहें न बाकी चार।।

दैनिक चार्ट

नीचे हम कुछ प्रश्न लिख रहे हैं। उन्हें आप एक चार्ट का रूप दे सकते हैं। इस तरह का एक चार्ट रखना बहुत लाभकारी सिद्ध हो सकता है।

1. **(क)** आप ईश्वरीय स्मृति में विशेष रूप से कितना समय बैठे?
   (ख) कार्य-व्यवहार आदि करते समय आप सारे दिन में कितना ईश्वरीय याद में रहे?
2. योग में आपकी स्थिति साधारण थी, अच्छी थी या बहुत ही अच्छी थी?
3. आपने आज ज्ञान का मनन-चिन्तन कितना समय किया?
4. **(क)** आज आपने विशेष तौर पर किस दिव्य-गुण की धारणा के लिए पुरुषार्थ किया?
   (ख) क्या उसमें आपको सफलता मिली?
5. **(क)** क्या आपने पवित्रता, स्वच्छता, भोजन और निद्रा से पहले ईश्वरीय स्मृति में स्थिति आदि नियमों का सन्तोषजनक रीति से पालन किया?
   (ख) कौन से नियम का आज आपने पालन नहीं किया?
6. **(क)** क्या आपने दूसरों की कोई ईश्वरीय सेवा की?
   (ख) क्या आपने आज ईश्वरीय ज्ञान ही सुनाया या ईश्वरीय सेवार्थ कुछ धन दान दिया या योग द्वारा सेवा की?
7. **(क)** आपके मन में कोई विकार तो नहीं आया?
   (ख) यदि आया तो क्या वह मन तक ही रहा या वचन में या कर्म में भी आया?
   (ग) क्या आपने उस विकार से अच्छी तरह युद्ध किया? यदि हाँ, तो आपने अपने ही ज्ञान-बल से अथवा योग-बल से या किसी अन्य अच्छे पुरुषार्थी की सहायता के द्वारा उससे निवृत्ति प्राप्त की?
   (घ) यदि आपकी विकार से हार हुई तो किस कारण से?
8. क्या व्यर्थ संकल्पों या कार्यों में आज आपने कुछ समय व्यर्थ तो नहीं किया?

प्रजापिता ब्रह्माकुमारी ईश्वरीय विश्व विद्यालय
मुख्यालयः आबू पर्वत, राजस्थान(भारत)